

## स्नेह निर्झर बह गया

‘इस आसमान को देखो! कितना खुला और विस्तार दिखता है यहां से।’ चौथी मंजिल पर खड़े प्रोफेसर दयाकृष्ण ने कहा। सभी प्रेम से उन्हें दया जी कहते। प्रो. दयाकृष्ण मेरे औपचारिक गुरु नहीं रहे। उनके साथ कुछ अनौपचारिक समय बिताने का मुझे संयोग मिला है। उनके साथ बिताए समय की स्मृतियों को यहां लिखने की कोशिश कर रहा हूं। बहुत-सी बातें उनके व्यक्तित्व को असामान्य बनाती थीं। एक व्याख्यान में उन्होंने कहा, ‘जब मैं सड़क पर जाता हूं मुझे इमारतें दिखती हैं और इनमें से कुछ इमारतें बहुत खूबसूरत दिखती हैं।...बाहर मौसम कितना अच्छा है ! क्या ये पिकनिक मनाने का समय नहीं है ? ये किसी व्याख्यान का समय तो नहीं है।’ दया जी अपने आसपास के प्रति गहरे आत्मीय लगाव, संवेदनशीलता और जीवन्तता से ओतप्रोत रहते थे। शिक्षा की मौजूदा स्थितियों पर उनकी तीखी प्रतिक्रिया थी, ‘जहां शिक्षा का मतलब कॉमर्स में भविष्य देखना है, एमबीए में भविष्य देखना है, वहां शिक्षा की भूमिका बदल रही है। शिक्षा का स्वरूप बदल रहा है।...अचानक कोटा मशहूर हो गया है। कभी भी कोटा कोई महान शैक्षिक केन्द्र नहीं था।...हम इसे शिक्षा की दुकान कहते हैं।’ 84 वें वर्ष में भी सामयिक घटनाओं और दुनिया में हो रहे बदलावों के प्रति उनकी बेहद संवेदनशील और पैनी नजर थी।

मेरा परिचय विद्यार्थी जीवन में दया जी से नहीं था। जब मैंने एम. ए. में प्रवेश लिया, उससे बहुत पहले ही दया जी सेवानिवृत्त हो चुके थे। हमारे शिक्षक, जो दया जी के विद्यार्थी रह चुके थे, दया जी के किस्से और पढ़ाने के नायाब तरीके बड़े मजे से हमें सुनाते। उनके लिए किसी विषय पर बात करना अनुशासन की सीमाओं में बंधा नहीं होता था। न ही वे किसी किताबी ज्ञान और सूचनाओं को विद्यार्थियों तक पहुंचा देने के पक्ष में थे। उनका मानना था कि शिक्षक का काम विद्यार्थी के मन को कुरेदना है। यदि शिक्षक विद्यार्थी के मन में किसी प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न कर पाता है तो मान लो उसका काम पूरा हो गया। अपने पढ़ाने के तरीकों में विद्यार्थी के अपने अर्जित अनुभवों से वे शुरू करते। जब उन्हें सौन्दर्यशास्त्र पर कोई चर्चा करनी होती तो वे अपने विद्यार्थियों से कहते, ‘कल आओ तो अपने आसपास की इमारतों को देखकर आना।’ और फिर चर्चा शुरू होती, ‘तुम्हें कौनसी इमारत खूबसूरत लगी ? क्या चीज थी जो खूबसूरत थी ?’ यही उनका तरीका होता था सौन्दर्यशास्त्र के मानदण्डों पर चर्चा करने का।

दया जी से मेरा पहला परिचय उनके द्वारा एम.ए. के विद्यार्थियों के लिए तैयार की गई दो पुस्तकों के माध्यम से हुआ। हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों के लिए दर्शन पर उपयुक्त किताबों के अभाव में उन्होंने पाश्चात्य दर्शन पर दो पुस्तकें संपादित कीं। और एक स्वलिखित पुस्तक थी ‘ज्ञान मीमांसा’। ज्ञान मीमांसा सहज-सरल हिन्दी में लिखी दार्शनिक गंभीरता लिए एक छोटी-सी पुस्तक थी। दिगन्तर में लम्बे समय तक इस किताब को प्रशिक्षणों में पढ़वाया जाता था। वे मानवीय विवेक के सार्वभौमिक गुणों में यकीन करते थे बजाए किसी परंपरा प्रियता के। ज्ञान मीमांसा के प्राक्कथन में उन्होंने भारतीय दर्शन परंपरा में कथित आध्यात्म का विरोध करते हुए साफगोई से कहा, ‘ध्यान लगाइए, खड़ताल बजाइए, प्रणायाम कीजिए, योग साधिए, यह सब कीजिए पर कम से कम इसे दर्शन (मैं इसे ज्ञान कहना चाहूंगा) की संज्ञा मत दीजिए।’ उनकी अक्सर यह कहकर आलोचना की जाती थी कि वे पश्चिम परस्त हैं। उनके आरंभिक समय के लिए यह बात कुछ हद तक सच भी है लेकिन बाद में उन्होंने अपना पूरा ध्यान भारतीय दर्शन परंपरा पर चिन्तन करने में लगाया। उनकी यह दृष्टि परंपरा के गुणगान के बजाए उसे आलोचनात्मक नजर से देखने पर केन्द्रित थी। इसका उदाहरण उनकी पुस्तक ‘काउन्टर पर्सपेक्टिव ऑफ इंडियन फिलॉसोफी’ में देखा जा सकता है। इस सब के बावजूद उनका मानना था कि मानवीय बुद्धि भौगोलिक सीमाओं में नहीं बंधी रहती। अच्छी चीजें जहां से भी मिलें, ली जानी चाहिए।

मेरी अनौपचारिक मुलाकातों का सिलसिला शिक्षा विमर्श से जुड़ने के बाद शुरू हुआ। जब भी मिलकर निकलता हमेशा कहते, ‘अच्छा भई विश्वंभर, फिर अईयो।’ दया जी सभी से हमेशा भरपूर गर्मजोशी और आत्मीयता से मिलते। ज्यादा दिन नहीं जाने पर कहते, ‘अरे! इस बार तो तू बहुत दिनों में आया है।’ उनसे किसी विषय पर बात शुरू होती तो उसी पर डेढ़-दो घंटे चलती रहती। उनका सिर्फ दर्शन ही नहीं कला, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित और शिक्षा जैसे विषयों पर समान अधिकार था। उनके अध्ययन का दायरा भी बहुत ही विस्तृत था। साहित्य के भी वे नियमित और अच्छे अध्येता थे। उन्हें हमेशा याद रहता था कि मैं जिस संस्था में काम करता हूं वह बच्चों की शिक्षा पर काम करती है। जब एक दिन मैं गया तो कहने लगे, ‘मैंने तुम्हारे लिए कुछ किताबें निकालकर रखी हैं। इन किताबों को देखो। कैसी लगीं ? अब तुम बताओ इन किताबों पर बच्चों के साथ तुम क्या कर सकते हो?’ वे निर्मल वर्मा की कुछ किताबें निकालकर लाए थे। दया जी जिस जिज्ञासा की बात विद्यार्थियों के संदर्भ में करते थे स्वयं हमेशा उससे ओतप्रोत रहते। एक बार मैंने उन्हें बताया, ‘दया जी,

इस बार व्याख्यान के लिए राजेन्द्र यादव आ रहे हैं।' उन्होंने कहा, 'यह बहुत जरूरी है कि साहित्यकारों से बात की जाए कि वे इस दुनिया को कैसे देखते हैं।' वे साहित्य और साहित्यकारों का बहुत सम्मान करते थे। वे हमेशा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से चीजों को जानने-समझने के लिए प्रेरित करते रहते थे। एक बार बहुत दिनों तक नहीं जा पाने और उनके पूछने पर मैंने बताया कि मैं पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के सिलसिले में एनसीईआरटी, दिल्ली गया था। वहां नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के अनुरूप किताबें बन रही हैं। बड़ी नाराजगी के साथ उन्होंने कहा कि यह केन्द्रीकृत पुस्तक निर्माण की प्रक्रिया ही एकदम गलत है। इन्हें छोटे स्तर पर बनाया जाना चाहिए। वैसे भी शिक्षा के मामले में राज्य का हस्तक्षेप कम से कम होना चाहिए। सरकार स्कूल के भवन बनवाए, सड़क बनवाए और आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध करवाए लेकिन जब सरकार यह बताने लगेगी कि हमें बच्चों को क्या पढ़ाना है तो इससे खराब बात और कोई नहीं है।

दया जी खुले मन से संवाद करते थे। मैंने एक बार कहा, 'दया जी, पाश्चात्य दर्शन में शिक्षा दर्शन की बात व्यवस्थित तरीके से होती रही है। हमारे यहां शिक्षा दर्शन की परंपरा क्या है?' बहुत ही उत्तेजना के साथ उन्होंने कहा, 'हमारे यहां शिक्षा दर्शन की कोई परंपरा ही नहीं रही। कुछ ऋषि-मुनि बच्चों को गुरुकुल में पढ़ाते रहते थे। व्यवस्थित तरीके से शिक्षा पर सोचा ही नहीं गया।' शिक्षा के बारे में उनका कहना था कि शिक्षा के नाम पर हम विभिन्न विषयों का सिर्फ इतिहास पढ़ा रहे हैं। उनकी पीड़ा थी कि ज्ञान को भोग्य वस्तु के तौर पर देखा जा रहा है। उनके लिए ज्ञान का आशय - उपयोगितावादी नजरिए से कहीं ज्यादा - गंभीरता अर्जित करना, प्रतिबद्धता अर्जित करना, ईमानदारी, सहयोग और अन्य केन्द्रित चेतना अर्जित करना था। उनके अनुसार सीखना जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और शिक्षा जीवन जीने की सार्थकता की तलाश। अपने लिए वे जीवनपर्यन्त इसी सार्थकता की तलाश करते रहे।

तीन पीढ़ियों को दया जी के ज्ञान और अनुभव का सानिध्य मिला। सभी एक ही तरह से दया जी के प्रशंसक थे। मोटे लैस की मदद से अन्तिम दिनों में भी अथक रूप से काम करते रहे। अन्तिम मुलाकात में उन्होंने कहा, 'हमने करीब 1000 ऋषियों को अपना नमस्कार कर दिया है।' अपने अन्तिम दिनों में वे वेदों में अलग-अलग जगहों पर आए ऋषियों और ऋषिकाओं के सूक्तों के एक साथ संकलन और उनकी व्याख्या पर काम कर रहे थे। 5 अक्टूबर को उनके निधन से हम सभी उनके स्नेहिल और आत्मीय संग से अलग हो गए हैं।

दया जी ने अपने जीवन और दर्शन में ही नहीं बल्कि अपने निधन पर भी प्रचलित जड़ मान्यताओं को तोड़ा। उनकी तीये की बैठक विशेष प्रकार की थी। उनके निधन का शोक सभी को था लेकिन यह अवसर भी असामान्य और उनके विचारों के अनुरूप ही था। उनके सहकर्मियों, शिष्यों और परिवार जनों ने दया जी के साथ के अनुभवों के किस्से सभी को सुनाए। और तीये की बैठक का अंत था-मिठाई का वितरण। शायद दुष्यंत का यह शेर उनके लिए प्रासंगिक ही होगा- 'जिएं तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले/मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए'। दया जी को आतिथ्य का बहुत शौक था। उनकी अन्तिम विदाई भी उनके इसी आतिथ्यभाव से हुई।

इसे दुर्योग ही कहा जा सकता है कि इस अंक में हमें दो व्यक्तियों को श्रद्धांजलि अर्पित करनी पड़ रही है। 'क्या अधिकतर विद्यालयों में दीवारें होती हैं? ...दीवारें अक्सर अदृश्य होती हैं, पर थोड़ी-सी अन्तःदृष्टि हो तो देखी जा सकती हैं। बच्चे इन दीवारों का तजरबा तब करते हैं जब विद्यालय उनसे यह कहते हैं कि 'तुम्हें दाखिला नहीं मिलेगा क्योंकि तुम चयन परीक्षा में 'अनुत्तीर्ण' रहे। तुम्हारे माता-पिता फीस नहीं भर सकते। तुम्हारे माता-पिता सुपात्र श्रेणियों में नहीं आते।' इन पंक्तियों के लेखक डॉ. मदन मोहन झा आज हमारे बीच नहीं हैं। 7 सितम्बर को 56 वर्ष की उम्र में उनका असामयिक निधन हो गया। डॉ. झा को वरिष्ठ और संवेदनशील प्रशासनिक अधिकारी से कहीं ज्यादा शिक्षा में उनके योगदान के लिए जाना जाएगा। बिहार ही नहीं बल्कि भारत भर में चल रहे शैक्षिक सुधारों के साथ वे जुड़े हुए थे और निरंतर शैक्षिक शोध करते रहे। आज जबकि चारों तरफ शिक्षा के निजीकरण की बात हो रही है, ऐसे समय में डॉ. झा बिहार में समान स्कूल प्रणाली को क्रियान्वित करने के सपने देख रहे थे और पूरी प्रतिबद्धता के साथ इसके लिए काम कर रहे थे। इसी की क्रियान्विति के लिए उन्होंने बिहार में समान स्कूल प्रणाली के लिए एक शिक्षा आयोग का गठन करवाया जो कि सरकार को यह सलाह देने के लिए बनाया गया कि समान स्कूल प्रणाली को राज्यभर में कैसे लागू किया जा सकता है। स्वयं वे उस आयोग के सदस्य थे।

स्कूल व्यवस्था में तमाम कारणों से बढ़ रहे अपवर्जन को लेकर उनकी चिंता मुखर थी। उनकी बहुचर्चित पुस्तक 'समावेशी शिक्षा : दृष्टिकोण और प्रक्रियाएं' शिक्षा पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तक है। 'स्कूल एक ऐसी बगिया हो सकता है जहां समान रूप से सभी प्रकार के फूलों को खिलने का अवसर बिना किसी भेदभाव के मिले।' शिक्षा के बारे में यह उनकी सूक्ष्म और प्रतिबद्ध दृष्टि का ही द्योतक है। डॉ. मदन मोहन झा के निधन से उन तमाम प्रयासों को धक्का लगा है जो कि शिक्षा के न्यायपूर्ण वितरण के लिए किए जा रहे हैं। दिगन्तर और शिक्षा विमर्श की ओर से हम डॉ. मदन मोहन झा को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। ♦

